



किसान-समस्या और समकालीन हिन्दी आलोचना

(विशेष सन्दर्भ 1857)

उज्ज्वल आलोक (शोधार्थी)

भारतीय भाषा केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली

शोध संक्षेप

वर्तमान समय में किसान अपनी समस्या के साथ जगह-जगह अपनी आवाज उठा रहे हैं, किन्तु उनकी समस्याओं को नजरअन्दाज किया जा रहा है। ऐसे में यह आवश्यक है कि स्वतन्त्र भारत के निर्माण में किसानों की भूमिका को रेखांकित किया जाए। साथ ही इतिहास में झाँक कर देखा जाए कि जिस गुलामी से मुक्ति की वे कामना करते रहे हैं, क्या आज उससे मुक्त हो पाए हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में 1857 के सन्दर्भ में किसान-समस्या और समकालीन हिंदी आलोचना पर विचार किया गया है।

भूमिका

भारत एक खेतिहर देश है और इसमें बहुत बड़ी आबादी कृषकों की है। गुलाम भारत में साम्राज्यवादी शोषण का अगर सबसे अधिक शिकार बने तो किसान ही। अंग्रेजों द्वारा बनाई गई नीतियों से यही वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हो रहा था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनका शोषण दोहरे स्तर पर हो रहा था। जिसके कारण इनमें भयानक असन्तोष फैला हुआ था और किसान क्रान्ति की राह पर बढ़ चले थे। बात जहाँ तक प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में किसानों की भागीदारी की है तो यह प्रश्न काफी महत्त्वपूर्ण है। धनगरे ने इस प्रसंग में लिखा है, "दुर्भाग्य से भारतीय गदर (इण्डियन म्यूटिनी) का जो कृषि वाला पक्ष है, उसे या तो कम कर के दर्शाया गया है या उसकी अनदेखी की गई है। यह दोष सरकारी स्रोतों में है और उन इतिहासकारों में जिन्होंने केवल इन स्रोतों पर

भरोसा किया है।"1 कहने का मतलब यह कि साम्राज्यवादी शक्तियों से देश को मुक्त कराने के लिए जो आन्दोलन हुए। उसमें किसानों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इन्होंने न केवल 1857 के संग्राम में भाग लिया, वरन् इससे पहले हुए तमाम विद्रोहों में कहीं अंग्रेजों से सीधी टक्कर ली, तो कहीं अंग्रेजों के पक्षधर जमींदारों से। भारत में अंग्रेजों का उद्देश्य धन की लूट करना था। चूँकि भारत एक खेतिहर देश था। अतः यह बताने की आवश्यकता नहीं कि धन का एक बड़ा हिस्सा कृषि से प्राप्त होता था। धन की लूट करने के उद्देश्य से अंग्रेजों ने अलग-अलग व्यवस्थाएँ की, जिससे वे पूर्ण लाभ उठा सकें। इन नीतियों के कारण किसानों की बिगड़ती स्थिति की उन्हें कोई चिन्ता न थी। सबसे कम झमेला कर के सबसे ज्यादा भू-राजस्व कैसे वसूल किया जाय, इसी इरादे से अंग्रेज शासक वर्ग ने अनेक तरह की भूमि व्यवस्थाओं की

परिकल्पना की।² अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अंग्रेजों ने किसानों की बदहाल हालत को नजरअन्दाज करते हुए अकालों के बावजूद निरन्तर लगान वृद्धि की। 28 सितम्बर 1910 में ब्रिटिश सरकार द्वारा ज़ब्त की गई रचना 'देशेर कथा' में सखाराम गणेश देउस्कर इस बात की जानकारी देते हैं कि अकाल के बावजूद किसानों को लगातार लगान वृद्धि का दंश झेलना पड़ा, 'सन् 1769 में बंगाल में अकाल पड़ने की सम्भावना हुई थी। शस्य और अन्न बराबर महँगा होने लगा। इतने पर भी कर वसूल करने में राजपुरुषों ने उस समय खूब दक्षता दिखाई।'³ भू-राजस्व अंग्रेजों की आय का बड़ा स्रोत था। इसलिए यह उनके निशाने पर हमेशा रहा। निजामी शासन की तुलना में कम्पनी सरकार की आय पहले ही वर्ष से अकालों के बावजूद लगातार बढ़ती रही, जिसके भयानक दुष्परिणाम कृषकों को झेलने पड़े। विजेताओं के लाभांश के स्रोत वाणिज्य में नहीं, बल्कि भूराजस्व में निहित थे। लाभांश को अधिकतम करने के लिए भू-राजस्व का अधिकतम करना जरूरी था। बंगाल में जमींदारों पर लगातार दबाव डालने का और अधिकतम बोली बोलने वाले को अस्थायी राजस्व फार्मों की नीलामी देने की व्यवस्था का यही कारण था। बंगाल में दीवानी भूमि से वस्तुतः प्राप्त राजस्व सन् 1762-63 में निजामी शासन के दौरान 64.5 लाख रुपये से बढ़कर कम्पनी सरकार की दीवानी के पहले वर्ष में ही 147 लाख रुपये हो गया। दूसरे आँकड़ों के अनुसार बंगाल का राजस्व सन् 1765-66 में 2.26 करोड़ रुपये से बढ़कर सन् 1778-79 में 3.7 करोड़ रुपये हो गया। यह दबाव इतना भयानक था कि सन् 1769-70 के अकाल के दौरान भी जिसमें बंगाल के खेतिहरों की कुल जनसंख्या का एक तिहाई

भाग साफ हो गया, राजस्व के निर्धारण में कोई कटौती नहीं की गई।⁴ भारतीय किसानों का बड़े पैमाने पर शोषण हुआ था। यह शोषण इतना भयंकर होता था कि किसान अपनी जमीन छोड़ने पर बाध्य हो जाते थे और वे मजदूर बन जाते थे। वहाँ भी उन्हें शोषण से निजात नहीं मिलती थी। 'आज का भारत' में रजनी पाम दत्त लिखते हैं कि साम्राज्यवादियों ने हिन्दुस्तान के किसानों का ऐसा जबर्दस्त शोषण किया है कि उसकी मिसाल दुनिया के किसी देश में नहीं मिलती। साम्राज्यवाद की छत्रछाया में उसके सहारे जीने वाली और अपने सहारे साम्राज्यवाद को जिलाने वाली सैकड़ों जाँके पलती रहती हैं। इसका नतीजा यह होता है कि किसानों की गरीबी, शोषण और उनका कर्ज ही नहीं बढ़ता, बल्कि वर्गों का आपसी भेद भी बढ़ता जाता है। झुंड के झुंड किसान जमीन छोड़ने पर मजबूर हो जाते हैं। खेत छोड़ने वाले किसान गुलामों के दर्जे तक पहुँच जाते हैं। वे बेजमीन खेतिहर मजदूरों की बढ़ती हुई जमात में शामिल हो जाते हैं।⁵ किसानों के ऊपर बढ़ते हुए अत्याचार और उनके गिरते हालात ने किसान-क्रान्ति की शंका पैदा कर दी थी, जो सत्य साबित हुआ। यह लड़ाई देश के सूदखोर बुर्जुआ नेताओं ने नहीं लड़ी थी। यह लड़ाई तो भूखे मनुष्यों की टोली द्वारा लड़ी गई थी। सन् 1852 में बम्बई सरकार के सामने पेश की गई एक रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि किसानों का विद्रोह इस बात का सूचक है कि उन पर किए जाने वाले अत्याचार सारी हदें पार कर चुके थे, "हमारे सूबे के दो अलग-अलग छोरों पर दो देहाती महाजन जान से मार डाले गए हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि सिर्फ इक्का-दुक्का कर्जदार ही किसी खास गाँव में परेशान हैं। वास्तव में पूरे प्रान्त की खेतिहर जनता और

महाजन के बीच में जो तनाव पैदा हो गया है, उसी ने इन हत्याओं में भयंकर रूप धारण किया है। हिन्दुस्तान के किसान अपने धीरज और सहनशीलता के लिए प्रसिद्ध हैं। वे हमेशा ही अन्याय और दुर्व्यवहार सहने के लिए आदी हो गए हैं। ऐसे किसान भी आज बदला लेने के लिए हत्या पर उतर आए हैं। इसी से समझा जा सकता है कि उनकी कैसी दशा हो गई है। अब उन्हें इस बात का भी खौफ नहीं रहा कि यों हत्या करने से वे खुद भी कुत्तों की मौत मारे जाएंगे। कितना जबर्दस्त अन्याय उनके साथ किया गया होगा। सरकार और कानून से इंसाफ की सब आशा टूटने पर ही इस तरह उनका धीरज टूटा होगा और उनके सहनशील स्वभाव में हत्या करने का भयंकर विचार पैदा हुआ होगा।⁶

1857 की क्रान्ति और किसान

बात जहाँ तक सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में किसानों की भागीदारी की है, तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इसमें किसानों का अच्छा-खासा दखल था। अंग्रेजों की नीतियों के फलस्वरूप किसान सबसे ज्यादा प्रभावित हुए थे। साथ ही उनको बेहद अत्याचार का सामना करना पड़ा था। इस विषय पर मार्क्स ने अनेक लेख न्यूयार्क डेली ट्रिब्यून में लिखे। भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम 1857-59 पुस्तक में उस दौर में घट रही घटनाओं पर नजर डाली गई है। मार्क्स असंतुष्ट किसानों की भावना से परिचित थे और वह जानते थे कि वे प्रमुख विद्रोहों का समर्थन कर रहे थे, इसलिए अंग्रेजों के लिए गदर का दमन करना बहुत ही कठिन हो गया था। लेकिन उन्होंने क्रान्तिकारी उथल-पुथल के लिए किसानों की क्षमता को बहुत गम्भीरता से न लिया था, न उन्होंने यूरोप से बाहर उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादी शोषण की तत्कालीन

परिस्थितियों में क्रान्ति की सम्भावना स्वीकार की थी। सन् 1857 के विद्रोह में किसान सामंतों और भूस्वामियों का समर्थन अंग्रेजों के विरुद्ध कर रहे थे।⁷

अंग्रेजों के खिलाफ किसानों में जबर्दस्त असन्तोष फैला हुआ था। वे एक ओर अपने ही देश के शोषणकारी तत्त्वों के खिलाफ थे तो दूसरी ओर अंग्रेजों के खिलाफ। उनका यह आन्दोलन परोक्ष-अपरोक्ष दोनों रूपों में देश की स्वाधीनता से जुड़ रहा था। अंग्रेजों ने ताल्लुकदारों, जमींदारों की श्रेणियों को बनाए रखा क्योंकि यह उनके हित में था। यहीं नहीं, उन्होंने कुछ ऐसे कानून भी बनाए जिससे ताल्लुकदारों को खुश रखा जा सके और वे उनके खिलाफ सिर न उठा सकें। उनकी यह नीति कुछ हद तक सफल भी रही। गदर पर अपनी पुस्तक में जान पैम्बल ने बताया है कि अंग्रेज अधिकारी यह प्रयत्न कर रहे थे कि मालगुजारी की नीति ऐसी बनाई जाए कि उससे अवध के ताल्लुकदार खुश रहें। जब गदर शुरू हुआ, तब इन अधिकारियों ने देखा कि उनके प्रयत्न का फल अच्छा निकला है, क्योंकि अधिकांश ताल्लुकदार विद्रोहियों की मदद के लिए आगे न बढ़े।⁸ बहरहाल, किसानों में विद्रोह की आग सुलग चुकी थी और इस दिशा में उनके आगे बढ़ते कदम ने जमींदारों को स्वतन्त्र न रहने दिया। यदि नीचे से दबाव न पड़ता तो ताल्लुकदार अंग्रेजों का साथ देते या तटस्थ रहते। लेकिन ताल्लुकदार सर्वत्र काम करने में स्वतन्त्र नहीं थे। उनमें बहुतों को केवल अपनी इच्छा का ध्यान नहीं रखना था। बल्कि उनके जो अपने सैनिक थे और उनके द्वारा जो संरक्षित जमींदार थे, उनकी इच्छाओं का भी ध्यान रखना था। अंग्रेजों के प्रति इनका रुख बहुत कम अनुकूल था। कुल मिलाकर कहा जा सकता है



कि उन्होंने जो कुछ किया, वह जनमत (पब्लिक ओपीनियन) द्वारा निर्धारित हुआ, यही नहीं, जब हैवलॉक समय पर लखनऊ न पहुँचा और चिनहट में अंग्रेजों की हार हुई। यह देख कर ताल्लुकदारों ने समझ लिया कि उन्हें अब जनता की आवाज के सामने झुकना है।⁹

अंग्रेजों की सेना में किसान परिवार से आने वाले लोग भी थे। जब किसानों ने साम्राज्यवादी ताकतों के खिलाफ विद्रोह किया, तो वे भी उनके साथ हो लिए। सन् 1857 के संग्राम में अंग्रेजों की भारतीय सेना ने अपने ही देशवासियों का साथ दिया। फौजी और किसान एक-दूसरे से बहुत गहराई से जुड़े हुए थे। पैम्बल ने बैसवाड़े के बारे में लिखा है कि बंगाल सेना की स्रोतभूमि बैसवाड़ा था अर्थात् जिस अंग्रेजी फौज को बंगाल आर्मी कहा जाता था, उसमें अधिकांश सैनिक बैसवाड़े के थे। पूर्वी उन्नाव और पड़ोसी रायबरेली जिलों के किसान बंगाल सेना के लगभग 40 हजार जवानों के सगे-सम्बन्धी थे। उनके लिए यह स्वाभाविक था कि वे विद्रोह को मजबूत करें और अंग्रेजों ने जिस तरह की प्रतिहिंसा से इलाहाबाद और कानपुर में काम लिया था उसे रोकें। यहीं नहीं इस सम्बन्ध में यह बात भी कही गई कि एक भाई फौज में है, दो भाई घर में हैं। एक भाई बाहर लड़ रहा है तो दो भाई घर में बैठे थोड़े ही रहेंगे। जवार का एक गाँव लड़ रहा है तो उसी जवार का दूसरा गाँव चुप नहीं रहेगा। वह उस गाँव की सहायता करेगा। इस तरह सन् 1857 में गाँवों के किसान और फौज में भर्ती जवान मिलकर अंग्रेजों से लड़े। सन् 1857 का स्वाधीनता संग्राम क्रान्ति इसलिए भी था कि आम किसान ऊपरवाले मालिकों को झुका रहे थे अंग्रेजों से लड़ने के लिए बाध्य कर रहे थे।¹⁰

वास्तव में स्वतन्त्रता संग्राम में किसान प्रमुख भूमिका निभा रहे थे। उनकी भागीदारी किसी एक क्षेत्र विशेष तक सीमित न थी, बल्कि यह पूरे देश में फैली हुई थी। किसानों का विद्रोह अत्यन्त उग्र रूप में सामने आ रहा था जिसे कई लेखकों ने स्वीकार किया है। जहाँ-जहाँ जमींदार, ताल्लुकदार अंग्रेजों की सहायता कर रहे थे, किसानों ने सबसे पहले उन्हीं पर आक्रमण किया। गदर के लिए देश के किसानों में दूर-दूर तक सहानुभूति थी, यहाँ तक कि बंगाल में भी किसान उससे आन्दोलित हुए थे। अरविन्द पोद्दार ने लिखा है, यद्यपि पढ़े-लिखे भद्र लोग विद्रोह के लिए कोई उत्साह न दिखा रहे थे और तटस्थ रहे, पर आम किसान जनता (द मासेज़ आफ पेजेन्टरी) एक तरह से विद्रोह द्वारा आन्दोलित हुई और कलकत्ता के आसपास के जिलों में खतरे की सम्भावना को गम्भीरता से लिया गया था। जब बंगाल के किसानों पर यह असर हो सकता था तो अवध के पड़ोसी क्षेत्रों पर तो उसका असर होना ही था।¹¹

सन् 1857 की लड़ाई में जिस खेतिहर जनता ने साम्राज्यवादी शक्तियों से लोहा लिया था, उनका अन्त सिर्फ यहीं तक नहीं है। इसके बाद के विद्रोहों में भी वे अत्यन्त उग्र रूप से सामने आए। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के बाद विद्रोहों की शृंखला चल पड़ी। यह महज़ आन्दोलन के रूप में न था। किसानों ने सशस्त्र संग्राम छेड़ा था। जिस समय देश के नेता इनकी समस्याओं को नजरअन्दाज कर रहे थे और उनके होते शोषण के खिलाफ आवाज न उठा सके तब अन्ततः किसान स्वयं मुक्ति के लिए उठ खड़े हुए, जब नवोदित बुर्जुआ और पेट्टी बुर्जुआ वर्ग के लोग वैधानिक आन्दोलन विकसित करने में व्यस्त थे, हमारे देश के किसान उपनिवेशवादियों और इसके



संरक्षण में पलने वाले जमींदारों, साहूकारों तथा सूदखोरों के विरुद्ध सशस्त्र संग्राम का रास्ता अपना रहे थे। ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के विरुद्ध भारतवासियों का जनमत तैयार करने में इन संग्रामों की भूमिका बहुत बड़ी है। नील विद्रोह (1859-60), जयंतिया विद्रोह (1860-63), कूकी विद्रोह (1860-90) फूलागुडी का दंगा (1861), कूका विद्रोह (1869-72), पबना का किसान (1872-73), महाराष्ट्र के किसानों का मोर्चा (1875), पूना में वासुदेव बलवन्त फड़के के नेतृत्व में विद्रोह (1879) और रंपा विद्रोह (1879-80) ऐसे ही विद्रोह थे।¹² ये विद्रोह बड़े भयंकर और उग्र थे। ब्रिटिश सरकार के लिए यह बेहद सिरदर्द का विषय बन गया था। इन विद्रोहों में कुछ-कुछ तो इतने भयंकर थे कि उसकी तुलना सन् 1857 के महाविद्रोह से की गई। लार्ड कैनिंग के शब्दों में नील के किसानों के वर्तमान विद्रोह के बारे में प्रायः एक सप्ताह तक मुझे इतनी चिन्ता रही जितनी दिल्ली की घटना (अर्थात् 1857 का महाविद्रोह) के समय भी नहीं हुई थी। मैं हर समय सोचता रहता कि अगर किसी अबोध निलहे ने भय या क्रोध से गोली चला दी तो किसी वक्त दक्षिण बंगाल की सब कोठियों (अर्थात् नील की कोठियों) में आग लग जाएगी।¹³

डॉ.रामविलास शर्मा ने लिखा है कि “जहाँ तक 1857 का सम्बन्ध है, अंग्रेज उसका महत्त्व खूब पहचानते थे।¹⁴ डेविड हार्डीमैन ने सन् 1858 से लेकर सन् 1914 तक के किसान-प्रतिरोध पर एक पुस्तक संकलित की और उसकी भूमिका में लिखा. “यद्यपि 1858 और 1914 के बीच किसान प्रतिरोध से अंग्रेजी राज्य को सीधा खतरा नहीं था, फिर भी वह एक ऐसी शक्ति थी जिससे उपनिवेश के अफसर सदा परेशान रहते थे।

पृष्ठभूमि में सदा 1857 का प्रेत मंडराया करता था।¹⁵ (पेजेंट रेजिस्टेंट इन इंडिया 1858-1940) स्पष्ट है कि सन् 1857 से लेकर सन् 1947 तक किसानों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण रही है, परन्तु जब औपनिवेशिक मानसिकता के इतिहासकार या राष्ट्रवादी इतिहासकार 1857 के इतिहास पर बात करते हैं तो किसानों की भूमिका पर फोकस नहीं करते। जब सबाल्टर्न इतिहास लेखन का उभार हुआ तो सबाल्टर्न इतिहासकारों ने किसानों की भूमिका को रेखांकित किया। हिन्दी के आलोचकों ने भी किसानों की भूमिका को महत्त्व दिया। डॉ.रामविलास शर्मा ने बताया कि 1857 की क्रान्ति में फौजों में अधिकतर किसान ही थे और गाँवों के गैरफौजी किसानों से उनका गहरा सम्बन्ध था दोनों मिलकर लड़े थे फौजी और गैरफौजी किसानों की एकता इनके विवरणों में अदृश्य रहती है।¹⁶ इन तथ्यों की पुष्टि समकालीन हिन्दी आलोचना के द्वारा सामने आए लोकगीतों में होती है।

खच खच खंजर तरवारि चललिए संगीन कृपान कटारी चललि

बर्छी बर्छा का बरखा से, बहि तुरत लहू के धारि चललि/बन्दूक दगलि दन् दनन्, दनन्, गोली दउरलि सन् सनन् सनन्

भालाए वल्लभ तेगा तब्बर बजि उठल उहाँ खन् खनन्/खउलल तब खून किसानन के, जागल जब जोश जवानन के/छक्का छूटल अंगरेजनि के, गोरे गोरे कपतानन के”¹⁷

एक अन्य लोकगीत में यह दिखाया गया है कि लड़ाई में किन किन हथियारों का प्रयोग हुआ था इन हथियारों को देख सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि इन सभी हथियारों का सम्बन्ध किसानों से ही है।

दुसमन देश के दबावे खातिर आवत बाटे



उठ भइया उठ देर ना लगाई जा
लड़े भिड़े में तो हम सगरे प्रसिद्ध बानी/आव ई
बहादूरी लड़ाई में देखाई जा
लाठी लीहीं सोटा लीहीं काता लीही ओ कोदारी
लीहीं/हाथ में गंडासा लीहीं आगे आगे धाईजा।”18
समकालीन हिन्दी आलोचना के सामने एक बड़ी
समस्या है किसानों के विस्थापन की। शम्भुनाथ
ने लिखा है कि आज के दिनों में किसान और
आदिवासी (आदिवासी किसान) विकास की वजह
से विस्थापन झेल रहे हैं।”19 नामवर सिंह ने
ध्यान खींचा है कि जो नवउदारवादी और विदेशी
कम्पनियाँ और विशेष अर्थक्षेत्र (सेज), इसका
गहरा असर हो रहा है। आज इस समय जो मार
पड़ रही है वो किसानों पर है। किसान आत्महत्या
कर रहे हैं। ये नया हमला है साम्राज्यवाद का,
अमेरिकी साम्राज्यवाद का।”20 आज भी इस
नवसाम्राज्यवाद के विरोध में किसान आन्दोलन
व आदिवासी आन्दोलन हो रहे हैं, जिसे देख
शम्भुनाथ लिखते हैं कि आज पुनः लग सकता है
कि किसानों के आन्दोलन और अस्मिता की
लड़ाइयाँ उदारीकरण की प्रक्रिया को उलटने वाली
हैं।”21

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि आज पुनः देश में जिस
नवसाम्राज्यवाद का आगमन हो रहा है, वह
किसानों और आदिवासी (किसानों) को काफी
कष्ट दे रहा है और आज भी पढ़ा-लिखा वर्ग यही
समझ रहा है कि वे विकास में बाधा पहुंचा रहे
हैं। समकालीन हिन्दी आलोचना किसानों की
समस्याओं को 1857 के परिप्रेक्ष्य में रखकर
समझने का प्रयास कर रही है और नव अमेरिकी
साम्राज्यवाद के पीछे छिपा ब्रिटिश साम्राज्यवाद की
तरह का जो लक्ष्य है, उसे स्पष्ट करने का
प्रयास कर रही है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

- 1 1857 भारत का मुक्ति संग्राम, देवेन्द्र चौबे, बद्दीनारायण हितेंद्र पटेल प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 263
- 2 आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास, सव्यसाची भट्टाचार्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 45
- 3 देश की बात, सखाराम गणेश देउस्कर, नेशनल बुक ट्रस्ट 2010, पृष्ठ 78
- 4 आधुनिक भारत, बिपिन चन्द्र, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्री., नई दिल्ली, 2007 पृष्ठ 4
- 5 आज का भारत, रजनी पामदत्त, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, 2004, पृष्ठ 217
- 6 वही, पृष्ठ 261
- 7 1857 भारत का मुक्ति संग्राम, देवेन्द्र चौबे, बद्दीनारायण, हितेंद्र पटेल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ 333
- 8 वही, पृष्ठ 334
- 9 वही, पृष्ठ 334
- 10 वही, पृष्ठ 334
- 11 वही, पृष्ठ 335
- 12 भारत का मुक्ति संग्राम, अयोध्या सिंह, ग्रंथ शिल्पी, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 71
- 13 वही, पृष्ठ 71
- 14 भारतीय संस्कृति और हिंदी प्रदेश, रामविलास शर्मा, किताबघर, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 349
- 15 वही, पृष्ठ 349
- 16 वही, पृष्ठ 350
- 17 प्रगतिशील, सण् कमल प्रसाद, वसुधा, जनवरी-मार्च 2008, भोपाल, पृष्ठ 337
- 18 वही, पृष्ठ 337
- 19 सभ्यता से संवाद, शम्भुनाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृष्ठ 37
- 20 प्रगतिशील, सण् कमल प्रसाद, वसुधा, जनवरी-मार्च 2008, भोपाल, पृष्ठ 73
- 21 सभ्यता से संवाद, शम्भुनाथ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2008, पृष्ठ 37